

स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद भारत के एक तेज चमकदार सितारे हैं। उनका हृदय था अत्यन्त संवेदनशील सागर की लहरियों-जैसा। उस तपःपूत संन्यासी ने जो कुछ हमें दिया अत्यन्त मूल्यवान है।

1. जन्म और बालकपन

कलकत्ता के समुलिया मोहल्ला के गौरमोहन मुखर्जी स्ट्रीट पर दत्त परिवार का मकान था। राममोहन दत्त कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट के वकील थे। उनके सुपुत्र दुर्गा दत्त थे। वे भी संस्कृत तथा फारसी पढ़े थे तथा कामचलाऊ अंग्रेजी भी जानते थे। पश्चिमोत्तर प्रदेशों के हिन्दी भाषी वेदांती साधुओं की संगत पाकर दुर्गा दत्त पच्चीस वर्ष की उम्र में ही घर छोड़कर संन्यासी बन गये। दुर्गा दत्त घर में अपनी पत्नी की गोद में विश्वनाथ दत्त नामक एक शिशु छोड़ गये थे। विश्वनाथ जवान होने पर वकालत करने लगे। इन्हीं विश्वनाथ दत्त के औरस तथा माता भुवनेश्वरी की कोख से नरेन्द्रनाथ नाम का वह तेजस्वी पुत्र 12 जनवरी, 1863 को पैदा हुआ जो स्वामी विवेकानन्द के नाम से विश्वप्रसिद्ध हुआ।

नरेन्द्रनाथ बचपन में स्वभाव से चंचल और उद्वण्ड थे। माता परेशान हो जाती थीं। माता घर में रामायण तथा महाभारत की कथा-कहानी नरेन्द्र को सुनाती थीं। नरेन्द्र पर उसका प्रभाव पड़ा। एक दिन बालक नरेन्द्र बाजार से सीताराम की युगलमूर्ति लाकर घर में उसकी पूजा करने लगा।

घर में जो गाड़ी का कोचवान था, उसे वैवाहिक जीवन से घृणा थी। एक दिन बात के क्रम में विवाह की बात चल पड़ी। कोचवान ने वैवाहिक जीवन की दुखरूपता एवं घृणास्वरूपता का चित्र बालक नरेन्द्र के सामने खींच दिया। बालक ने आंखों में आंसू भरकर माता से वैवाहिक जीवन की घृणारूपता की चर्चा की और कहा “मैं सीताराम की पूजा कैसे करूँ, क्योंकि सीता राम की पत्नी थी। वे विवाहित थे।” मां ने कहा—“बेटा, सीताराम की पूजा मत करो, शिव की करो।”

बालक नरेन्द्र शाम को सीताराम की युगलमूर्ति लेकर छत पर चढ़ गया और उसे जमीन पर फेंक दिया। मूर्ति चूर-चूर हो गयी। पीछे वे शिव की मूर्ति पूजने लगे।

विश्वनाथ के एक मुक्किल जो मुसलमान थे, वे उनके मित्र जैसे थे। नरेन्द्र उनकी गोद में बैठकर उनसे बातें करते थे। एक दिन नरेन्द्र ने उन मुसलमान सज्जन के हाथ का एक संदेश (मिठाई का टुकड़ा) खा लिया। इसको लेकर घर में बड़ा हो-हल्ला मचा। वकील विश्वनाथ तो जाति-पांति के लिए उदारदृष्टि वाले थे; किन्तु और घर वाले कट्टरपंथी थे। बालक नरेन्द्र के मन में जाति-पांति और छुआछूत के प्रति विद्रोह उत्पन्न हो गया।

नरेन्द्र को पांच वर्ष की उम्र से पढ़ाया जाने लगा। उनकी उद्वेगिता से अध्यापक भी परेशान रहते थे। नरेन्द्र को चौदह वर्ष की उम्र में पेट की बीमारी हुई। वे सूख गये। उनके पिता उस समय सरकारी काम से मध्य प्रदेश के रायपुर शहर में रह रहे थे। समय 1877 का था। नरेन्द्र को भी स्वास्थ्य-लाभ के लिए जलवायु परिवर्तन की बात सोचकर रायपुर बुलाया गया। उस समय मध्य प्रदेश में ज्यादा रेलवे लाइनें नहीं थीं। अतः कलकत्ता से इलाहाबाद, जबलपुर होते हुए नरेन्द्र ट्रेन से नागपुर गये तथा नागपुर से बैलगाड़ी से पंद्रह दिनों में रायपुर। रायपुर में उस समय स्कूल नहीं था; अतः पिता विश्वनाथ दत्त स्वयं नरेन्द्र को इतिहास, दर्शन, साहित्य आदि पढ़ाते थे। नरेन्द्र दो वर्ष रायपुर में रहे। उनका स्वास्थ्य ठीक हो गया और वे कलकत्ता लौट गये। नरेन्द्र अपनी किशोर अवस्था में ही अपने पिता से संगीत सीख लिये थे।

2. विवेकानन्द की पूर्वस्थिति

अंग्रेजों तथा इसाई मिशनरियों के प्रचार तथा विलायती शिक्षा-दीक्षा से कलकत्ता 18वीं सदी में आंदोलित हो चुका था। हिन्दू समाज तंद्राग्रस्त था। उस समय उसे झकझोरकर जगाने वाले हुए स्वनामधन्य राजा राममोहन राय (1772-1833 ई०) जो एक धनी तथा संप्रदांत ब्राह्मण घराने में जन्में थे। उन्होंने पटना में अरबी, फारसी, काशी में संस्कृत तथा कलकत्ता में इंग्लिश, लैटिन एवं हिब्रू भाषा सीखकर कुरान, यूक्लिड, अरस्तू के ग्रंथ, वेदांत, बाइबिल आदि का अध्ययन किया। अतः वे तुलनात्मक अध्ययनकर्ता विचारों में उदार हुए। वे मूर्तिपूजा के विरोधी, एकेश्वरवादी, जाति-पांति को न मानने वाले तथा सतीप्रथा के विरोधी थे। उन्होंने बारह वर्षों के निरन्तर प्रयत्न से सतीदाह प्रथा को निषिद्ध ठहराने वाला कानून 4 दिसम्बर, 1829 ई० को सरकार से पास करवा लिया।

राजा राममोहन राय के आंदोलन से सनातनधर्मी कहलाने वाले लोग काफी क्षुब्ध हो गये। उन्होंने भी उनके विरुद्ध कुछ किया, परन्तु सफल न हुए।

राजा राममोहन राय ने हिन्दू-सुधार के लिए 'ब्राह्मसभा' की स्थापना की थी। विलायती हवा से हिन्दू युवकों के चारित्रिक पतन को देखकर वे बहुत दुखी थे। वे कुछ काम से विलायत गये। भारत के वे पहले पुरुष थे जिन्होंने

विलायत की यात्रा की। वे इंग्लैण्ड से लौटकर न आ सके। उनका वहां 27 सितम्बर, 1833 ई० में देहांत हो गया।

ब्राह्म समाज के प्रचार को विपिनचन्द्र पाल, महर्षि देवेन्द्र नाथ, केशव चन्द्र सेन आदि ने आगे बढ़ाया। 1850 ई० में अक्षयकुमार और राजनारायण के परामर्श से महर्षि देवेन्द्रनाथ ने वेदों की अपौरुषेयता तथा अभ्रांतता के सिद्धांत का त्याग कर दिया।

इसी काल में बंगाल के वीरसिंह नाम के गांव में महान पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर पैदा हुए। वे बंगभाषा के निर्माता, शिक्षा के प्रचारक, दीनों के सेवक तथा मानवता की महामूर्ति थे। इन्होंने 'विधवा विवाह' का प्रचार किया और सरकार से उसे वैध करवा दिया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर को हिन्दूसमाज का घोर विरोध सहना पड़ा था।

इसी काल में हुगली जिले के कामारपुर गांव में एक निर्धन ब्राह्मण परिवार में 17 फरवरी, 1836 ई० में एक महान पुरुष का जन्म हुआ था जिनका प्रसिद्ध नाम श्रीरामकृष्ण परमहंस हुआ। उन्होंने पढ़ाई-लिखाई को त्यागकर आध्यात्मिक साधना की। ये रानी रासमणि के बनवाये कलकत्ता में गंगा के पूर्व तट पर दक्षिणेश्वर के काली मंदिर में पुजारी बने और वहीं इनकी साधनास्थली बनी। इन्हें आगे चलकर तोतापुरी जी ने वेदांत का ब्रह्मज्ञान दिया था।

ब्राह्मसमाज के महानवक्ता केशवचंद्र सेन 1875 ई० में श्री रामकृष्ण परमहंस से मिले और वे उनके वैराग्य तथा आध्यात्मिक साधना से प्रभावित हुए। इसी प्रकार कई ब्राह्मसमाजी श्री रामकृष्ण के प्रति भक्ति-भावना रखने लगे। इसी काल में राजनारायण, बंकिम, भूदेव आदि के भी विचार गूँज रहे थे।

3. नरेन्द्रनाथ जिज्ञासु तथा साधक के रूप में

नरेन्द्र शांत स्वभाव के न थे। वे विधि-निषेध के बंधनों से अलग रहकर स्वतंत्र जीवन जीना पसन्द करते थे। वे व्यायाम, खेलकूद आदि में रुचि लेते थे। वे उच्च साहित्यिक ग्रंथ तथा दर्शनशास्त्रों का अध्ययन करते थे। वे न्यायशास्त्र तथा पाश्चात्य दार्शनिक ह्यूम, हर्बर्ट स्पेंसर आदि के दर्शनों का एफ० ए० पढ़ते समय ही अध्ययन कर लिये थे। "डेकार्ट के अहंवाद, ह्यूम और बेन की नास्तिकता, डार्विन का विकासवाद और सबसे ऊपर स्पेंसर का अज्ञेयवाद इत्यादि विभिन्न दार्शनिकों की विचारधारा में इतस्ततः बहते हुए नरेन्द्रनाथ सत्य की प्राप्त के लिए व्याकुल हो उठे।"¹

नरेन्द्रनाथ ने राजा राममोहन राय की पुस्तकें पढ़ीं और ब्राह्मसमाज के सदस्य बन गये। क्योंकि वे शुरू से ही जाति-पांति विरोधी स्त्री-पुरुष के

1. विवेकानंदचरित, पृष्ठ 79, संस्करण 8वां।

समानाधिकार के समर्थक तथा पाखण्ड से घृणा करने वाले थे और ये बातें ब्राह्मसमाज में मिलती थीं। नरेन्द्रनाथ ब्राह्मसमाज में रविवार को जाकर गीत गाते तथा उसके नियमों का पालन करते थे। किन्तु उनका मन वैराग्यशील था। ब्राह्मसमाज में इसका अभाव होने से उनका मन उसमें ठीक से नहीं लगता था। ब्राह्मसमाज के महापुरुष महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने नरेन्द्र को ध्यान लगाने को कहा। महर्षि देवेन्द्र के प्रति नरेन्द्र की बड़ी श्रद्धा थी। वे उनके कथनानुसार ध्यान करने लगे। यहां तक कि निरामिष भोजन, धोती-चदर आदि वेशभूषा अपनाकर जमीन पर सोना—यह सब नरेन्द्र करने लगे।

कलकत्ता के शिमिला मोहल्ले के सुरेन्द्रनाथ मित्र एक दिन अपने किसी आनंदोत्सव में श्रीरामकृष्ण परमहंस को अपने घर बुलाये। उनको कोई अन्य अच्छा गायक न मिलने से वे नरेन्द्रनाथ को गाने के लिए बुलाये। 1881 ई० के नवम्बर महीने में यही नरेन्द्र का श्री रामकृष्ण परमहंस के प्रथम परिचय का समय है। नरेन्द्रनाथ का गीत सुनकर श्रीरामकृष्ण परमहंस बहुत खुश हुए। चलते समय वे नरेन्द्र को अपने मंदिर दक्षिणेश्वर आने के लिए आग्रहपूर्वक कह भी गये। परन्तु नरेन्द्र अपने एफ० ए० की परीक्षा की व्यस्तता से वहां जाना भूल गये।

नरेन्द्र के विवाह की परिवार में भीतर-भीतर चर्चा चलने लगी। लड़की वाले भारी दहेज देने पर भी तुले थे। नरेन्द्र के पिता विश्वनाथ, नरेन्द्र से यह चर्चा स्वयं नहीं करना चाहते थे। उन्होंने यह चर्चा अन्य से करवायी। डॉक्टर रामचंद्र दत्त विश्वनाथ बाबू के सम्बन्धी थे तथा श्री रामकृष्ण परमहंस के भक्त भी थे। उन्होंने नरेन्द्र से विवाह की चर्चा की। नरेन्द्र शुरू से ही विवाह के विरोधी थे। उन्होंने डॉ० रामचंद्र दत्त को विवाह को आत्मोन्नति एवं आत्मशांति में विघ्न रूप बताकर उसकी बंधनशीलता तथा दुखरूपता समझा दी। तब रामचंद्र दत्त ने कहा कि तुम्हें यदि इस प्रकार आध्यात्मिक पिपासा है तो दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण परमहंस के पास जाओ।

नरेन्द्रनाथ अपने मित्रों के साथ दक्षिणेश्वर गये और श्री रामकृष्ण के दर्शन किये। वार्ता तथा संगीत हुआ। सबके बाद परमहंस जी नरेन्द्र को अकेले एकांत में ले गये और उनका हाथ पकड़कर उनसे गद्गद हो कहने लगे—“तू इतने दिनों तक मुझे भूलकर कैसे रहा! कब से मैं तेरे आने की बाट जोह रहा हूँ! विषयी लोगों के साथ बात करते-करते मेरा मुंह जल गया है। अब आज से तेरे समान सच्चे त्यागी के साथ बात करके मुझे शांति मिलेगी।”¹

नरेन्द्रनाथ श्री रामकृष्ण को आश्चर्यवत अपलक देखते रहे। उनके मुख से कुछ न निकल सका, परन्तु नरेन्द्रनाथ पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा।

1. वही, पृष्ठ 85।

नरेन्द्रनाथ की तरह राखालचंद घोष भी ब्राह्मसमाज के सदस्य थे, परन्तु वे भी श्री रामकृष्ण परमहंस के पास आते थे। एक दिन राखाल को दक्षिणेश्वर मंदिर में प्रतिमा को नमस्कार करते देखकर नरेन्द्र उनको मिथ्याचारी आदि कठोर वचन कहकर डांटने लगे। इस पर परमहंस जी ने नरेन्द्र को समझाया कि तुम प्रतिमा को नहीं नमस्कार करते हो तो कोई बात नहीं, किन्तु दूसरे को बुरा न कहो। नरेन्द्रनाथ अपने से भिन्न निराकार ईश्वर मानकर उसकी उपासना करते थे। इसलिए जब रामकृष्ण परमहंस कहते थे कि “मैं ब्रह्म हूँ” तब नरेन्द्रनाथ कहते थे “इससे अधिक पाप और कुछ नहीं है।”

नरेन्द्रनाथ गुरुजनों से यही पूछते फिरते थे “महाशय! आपने ईश्वर के दर्शन किये हैं?” लोग क्या उत्तर देते? जब वे श्री रामकृष्ण परमहंस से यही प्रश्न किये, तब उन्होंने कहा—“मैंने ईश्वर के दर्शन किया है। यदि तुम मेरे कथनानुसार काम करो, तो मैं तुम्हें भी उसके दर्शन करा सकता हूँ।”

नरेन्द्रनाथ सोचते थे कि यह सहज रास्ता नहीं है। इसके लिए मुझे इस पागल बाबा के चरणों में अपने को समर्पित करना पड़ेगा और फिर पता नहीं ईश्वर के दर्शन होते हैं कि नहीं। नरेन्द्रनाथ ब्राह्मसमाज में जाते रहे, अतएव श्रीरामकृष्ण परमहंस को अपना गुरु नहीं चुन सके।

बहुत दिनों तक नरेन्द्र को दक्षिणेश्वर न आते देखकर श्री रामकृष्ण परमहंस उन्हें देखने के लिए व्याकुल हो गये। वे सोचे “नरेन्द्रनाथ ब्राह्मसमाज में जाता होगा। मैं वहीं जाकर उसे देख आऊँ।” अतः वे ब्राह्मसमाज के सभाभवन में गये। वहाँ वेदी पर से उसके आचार्य महोदय भाषण दे रहे थे। श्री रामकृष्ण परमहंस वेदी के पास पहुँचकर ध्यान के भावावेश में आ गये। नरेन्द्रनाथ उनके आने का कारण मन में समझ गये और उनकी गिरती देह को पकड़ लिये। उधर वेदी पर बैठे ब्राह्मसमाज के आचार्य तथा अन्य ब्राह्मों ने परमहंस जी के लिए कोई शिष्टाचार का पालन न किया, बल्कि कितने ही लोग उनके प्रति अरुचि प्रकट किये। इतने में परमहंस जी भावसमाधि में निमग्न हो गये। उन्हें अनेक लोग देखने का आग्रह करने लगे। इसलिए उस जगह गड़बड़ी तथा कोलाहल मच गया। अतः संचालकों ने गैस की बत्तियाँ बुझा दीं। इधर नरेन्द्रनाथ ने श्री रामकृष्ण परमहंस को किसी तरह उठाकर पीछे द्वार से निकालकर दक्षिणेश्वर भेजवा दिया। ब्राह्मों की इस प्रकार परमहंस जी के लिए उपेक्षा देखकर नरेन्द्रनाथ ने ब्राह्मसमाज उसी दिन से छोड़ दिया।

नरेन्द्रनाथ को श्री रामकृष्ण परमहंस के भावावेश की समाधि तथा भक्तिभाव में रोना अच्छा नहीं लगता था; परन्तु वे उनके एकनिष्ठ त्याग-वैराग्यमय जीवन से बहुत प्रभावित हो गये। नरेन्द्र आलोचक थे। उनकी आलोचना से ऊबकर एक दिन परमहंस देव ने कहा—“तू यदि मेरी बात नहीं

सुनता, तो फिर यहां क्यों आता है?” नरेन्द्र ने उसी समय उत्तर दिया, “आपको चाहता हूं, इसलिए देखने को आता हूं, बात सुनने के लिए नहीं।”¹

श्री रामकृष्ण नरेन्द्र के प्रति जिस प्रकार स्नेह का प्रदर्शन करते थे, उसे देखकर नरेन्द्र ने एक दिन मजाक में कहा था “पुराण में लिखा है, भरत राजा हिरण के बारे में सोचते-सोचते मृत्यु के बाद हिरण हुए थे। आप मेरे लिए जैसा करते हैं, उससे आपकी भी दशा वैसी ही होगी।” यह बात सुनकर बालक की तरह सरल श्री रामकृष्ण ने चिंतित होकर कहा, “सच तो है रे, तो फिर क्या होगा भला? मैं तो तुझे देखे बिना नहीं रह सकता।”²

वस्तुतः वैराग्यप्रवण श्री रामकृष्ण देव नरेन्द्र की प्रतिभा को समझते थे और वे उन्हें वैराग्य के पथ पर खींच लाना चाहते थे जिससे नरेन्द्र स्वयं अपना कल्याण करें, और संसार को जगायें। वे नरेन्द्र में आसक्त नहीं थे। उनका नरेन्द्र के प्रति स्नेह आसक्ति नहीं, किन्तु लोकमंगलकर था।

नरेन्द्र बी० ए० की पढ़ाई के साथ अटर्नी का काम सीखने लगे। उधर पिता वकील विश्वनाथ दत्त नरेन्द्र को गृहस्थ बनाने की सोच रहे थे। नरेन्द्र अपने घर से अलग अपनी मातामही के मकान के एक शांत कमरे में रहकर पढ़ते तथा ध्यान, चिंतन करते थे। नरेन्द्रनाथ धनी वकील की संतान थे, परन्तु वे स्वयं सादे ढंग से रहते थे। समय-समय श्री रामकृष्ण परमहंस दक्षिणेश्वर से आकर नरेन्द्र को आध्यात्मिक उपदेश दे जाते थे। नरेन्द्र के साथ श्री रामकृष्ण की यह घनिष्ठता उनके घर वालों को अच्छी नहीं लगती थी।

एक दिन नरेन्द्र के एक मित्र ने आकर उनसे कहा—“दर्शन शास्त्रों की चर्चा, साधुसंग, धर्मालोचना आदि पागलपन छोड़ जिससे सांसारिक सुख-सुविधा हो, उसी के लिए प्रयत्न करना कर्तव्य है।”³ नरेन्द्र ने उत्तर दिया—“मैं समझता हूं कि संन्यास ही मानव जीवन का सर्वोच्च आदर्श होना चाहिए। नित्य परिवर्तनशील अनित्य संसार के पीछे सुख की कामना से इधर-उधर दौड़ने की अपेक्षा उस अपरिवर्तनीय ‘सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्’ को पाने के लिए प्राणपण से कोशिश करना सौ गुणा श्रेष्ठ है।”⁴

आगन्तुक मित्र ने उत्तेजित होकर कहा—“देखो नरेन्द्र! तुम्हारी जिस प्रकार बुद्धि और प्रतिभा थी; उससे तुम जीवन में काफी उन्नति कर सकते थे, परन्तु दक्षिणेश्वर के श्री रामकृष्ण देव ने तुम्हारी बुद्धि बिगाड़ दी है। यदि कुशल

-
1. वही, पृष्ठ 97।
 2. वही, पृष्ठ 98।
 3. वही, पृष्ठ 101।
 4. वही, पृष्ठ 101।

चाहते हो, तो उस पागल का संग छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायेगा।”¹

नरेंद्र की बी० ए० परीक्षा समाप्त हो गयी। वे निमंत्रित होकर एक रात अपने मित्र के यहां बैठे थे, कि उनको संदेश मिला कि तुम्हारे पिता की हृदयगति रुक जाने से उनका देहांत हो गया। वे पागल की तरह घर को भागे। देखते हैं कि पिताजी की लाश के चारों ओर घोर कोहराम मचा है।

पिता विश्वनाथ प्रसिद्ध वकील थे। वे उस जमाने में महीने में एक हजार रुपये कमाते थे, किन्तु खर्चशील इतने थे कि कुछ बचा नहीं पाते थे। परिणाम यह हुआ कि घर दरिद्र बनकर रह गया। यहां तक कि खाने को ठिकाना न रहा। सम्पन्नता में पला परिवार दाने-दाने को तरसने लगा। कभी-कभी घर में कुछ खाने को नहीं होता था, तब नरेन्द्र माता से बहाना बनाकर चल देते थे कि मेरा एक मित्र के यहां निमंत्रण है। कई दिन नरेंद्र उपवास रहकर या बहुत थोड़ा खाकर रह जाते थे। वे आहार के अभाव में दुबले हो गये। नरेन्द्र के अन्य दो छोटे भाई तथा एक बहिन थी। भाई, बहिन और मां की भी वही दशा हो गयी। नरेंद्र कानून की परीक्षा की तैयारी करने लगे और साथ-साथ कहीं काम-धंधे की खोज करने लगे।

परिस्थिति देखकर नरेंद्र के मित्र उन्हें भोजन के लिए निमंत्रण देते; परन्तु उन्हें निमंत्रण खाने जाना चुभने लगा। उनके स्वाभिमानी दिल को ठोकर लगती। साथ-साथ यह सोचकर उनका हृदय दो टूक हो जाता कि घर में माता, भाई तथा बहिन भूखे पड़े रहें और मैं किसी के घर भरपेट भोजन कर आऊँ, यह कैसे हो सकता है! कई दिन ऐसा अवसर पड़ता था कि नरेन्द्र भूख की ज्वाला से पीड़ित होकर मूर्च्छित जैसे पड़े रहते थे।

नरेन्द्र नंगे सिर, नंगे पैर दिन भर कलकत्ता में नौकरी ढूंढते और शाम को खाली हाथ तथा टूटे मन घर पर लौट आते। इसी बीच उन पर एक और वज्रपात हुआ। उन्हीं के खानदान के एक व्यक्ति ने उनको घर से निकाल देने के लिए एक मुकदमा दायर कर दिया।

एक दिन नरेंद्र प्रातःकाल “हे भगवान!” कहकर बिस्तर से उठे। उनकी माता ने झुंझलाकर कहा—“चुप रहो छोकरे, बचपन से ही केवल भगवान-भगवान! भगवान ने ही तो यह सब किया है।”² मां की उक्त बातें सुनकर नरेंद्र का चित्त डगमगा गया। उनको भी लगने लगा कि यदि भगवान है भी तो वह निर्विकार है, निष्ठुर है। उसको किसी से लेना-देना नहीं है।

1. वही, पृष्ठ 101।

2. वही, पृष्ठ 105।

लोगों में चर्चा फैल गयी कि नरेन्द्र का पहले जैसा धर्मभाव अब नहीं रहा। वे पतित हो गये। नरेन्द्र विपत्ति के कारण दक्षिणेश्वर भी नहीं जा पाते थे। श्री रामकृष्ण देव उन्हें देखने के लिए व्याकुल रहते। उनको संदेश देकर बुलाने की भी चेष्टा करते। नरेन्द्र के मन में श्री रामकृष्ण देव के लिए श्रद्धा बनी रही। नरेन्द्र के मन में यह बारम्बार होता था कि केवल धन कमाना तथा परिवार पोषना मेरा कर्तव्य नहीं है। उनके मन में संन्यास की आग जलती रहती थी।

एक दिन नरेन्द्र दक्षिणेश्वर गये। श्री रामकृष्ण देव ने कहा—“बेटा! कांचन-कामिनी का त्याग किये बिना कुछ न होगा!” श्रीरामकृष्ण देव के मन में डर था कि कहीं विपत्तिवश नरेन्द्र सांसारिकता में न लिपट जाये। उन्होंने नरेन्द्र को काफी सांत्वना दी।

घर पर मुकदमा होने से नरेन्द्र की माता भुवनेश्वरी असहाय जैसे हो गयीं। अंततः नरेन्द्र के स्वर्गीय पिता के मित्र बैरिस्टर उमेशचंद्र वन्द्योपाध्याय ने मुकदमा लड़ने का बीड़ा उठाया। मुकदमा में विजय हुई और नरेन्द्र ने हर्ष में दौड़कर आ माता को बताया “मां, मकान रह गया।” यह दुख के बीच सुख के क्षण थे। विरोधी ने पुनः अपील की; परन्तु वह भी खारिज हो गयी।

विपत्तिवश तार्किक नरेन्द्र का चित्त डगमगा गया। उन्होंने एक दिन श्री रामकृष्ण देव से कहा—“गुरुदेव! कालीजी से निवेदन कर दीजिये कि हमारे मां, बहिन, भाई को दो दाने खाने को मिलने लगे।”

नरेन्द्रनाथ अटर्नी ऑफिस में काम करके तथा कुछ पुस्तकों का अनुवाद करके धन कमाने लगे और घर के अभाव को दूर करने में सफल हो गये। अंततः ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के स्कूल में अध्यापन का काम करने लगे।

1883-84 ई० के बीच तक श्री रामकृष्ण देव कलकत्ते के लोगों में प्रसिद्ध हो चुके थे। उनके दर्शन के लिए भीड़ आने लगी थी, किन्तु इसी बीच, सन् 1885 ई० के मध्य-भाग में उनके गले का रोग धीरे-धीरे बढ़ गया। भक्त लोग चिंतित हो उठे। उन्हें चिकित्सा के लिए शहर में लाया गया और शहर के उत्तर हिस्से में काशीपुर में एक बगीचा वाला मकान किराये पर लेकर वहां श्रीरामकृष्ण देव को रखा गया। राखाल, बाबूराम, शरद, शशी, काली, तारक, लाटू आदि बालक भक्तगण सेवा में रहने लगे और बलराम, रामचंद्र, गिरीश, ईशान आदि गृहस्थ भक्त देखभाल करने लगे।

नरेन्द्रनाथ ने श्री रामकृष्ण देव की सेवा के लिए अध्यापन कार्य छोड़ दिया तथा घर भी छोड़ श्री रामकृष्ण देव के पास आकर रहने लगे। उक्त चर्चित बालक भक्तगण धीरे-धीरे कालेज छोड़कर श्री रामकृष्ण देव की सेवा में ही रहने लगे। किन्तु श्री रामकृष्ण देव नरेन्द्र से शारीरिक सेवा नहीं लेते थे। इसलिए उन्हें ऊपरी देखरेख करने में संतोष करना पड़ता।

श्रीरामकृष्ण देव की सेवा में ये कॉलेज से आये अनेक बालक भक्त आपस में सत्संग, कीर्तन, धार्मिक तथा वैराग्यवर्द्धक वार्तालाप भी करते और काशीपुर का वह बगीचा संन्यासियों का मठ जैसा बन गया।

एक दिन श्री रामकृष्ण देव ने उन सभी युवकों को संन्यास का वेष दिया। तत्पश्चात् वे सभी संभ्रांत घराने के युवक संन्यासी लज्जा छोड़कर भिक्षात्र मांगने गये और वे जब भिक्षा करके लौटे, तब श्री रामकृष्ण देव बहुत प्रसन्न हुए।

नरेंद्र युवा-संन्यासियों के बीच में खूब वैराग्य चर्चा करते थे। एक बार वे महात्मा बुद्ध के गृहत्याग तथा वैराग्य की चर्चा करते-करते इतने भाव-विभोर हो गये कि एक रात को अपने दो संन्यासी मित्रों शिवानंद (तारक) तथा अभेदानंद (काली) को लेकर बुद्ध गया चले गये। यह समय 1886 ई० का अप्रैल महीना था। वे बुद्ध गया होकर पुनः काशीपुर आ गये।

इधर श्री रामकृष्ण देव के गले का रोग भयंकर हो गया। वे पानी में पकायी बाली को भी नहीं घूट पाते थे। 1886 ई० का 15 अगस्त, रविवार दिन उनका शरीर कांपने लगा और काली का तीन बार नाम लेकर शरीर त्याग हो गया। शरीर छोड़ने के कुछ पूर्व उन्होंने नरेंद्र से कहा था “अरे, जो राम, जो कृष्ण, वही अबकी बार एक ही आधार में रामकृष्ण!” वस्तुतः यह उनका भावातिरेक था।

4. स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक के रूप में

श्री रामकृष्ण देव का दाह संस्कार हुआ। उनका भस्मावशेष एक ताम्रकलश में भरकर ले लिया और काशीपुर का बगीचा युवकों ने छोड़ दिया।

नरेंद्र अब स्वामी विवेकानंद हैं, इसलिए अब उनको इसी नाम से याद करना चाहिए। स्वामी विवेकानंद ने सोचा कि गुरुदेव के द्वारा गढ़े गये इन युवा संन्यासियों को यदि कोई सबल आधार न मिला तो बिखर जायेंगे। यह बात भक्तों को भी जंची, अतः श्री रामकृष्ण देव के गृहस्थ शिष्य सुरेंद्रनाथ मित्र ने वराहनगर में एक मकान किराये पर लेकर संन्यासियों को रहने का प्रबन्ध कर दिया।

स्वामी विवेकानंद के घर पर चलता हुआ मुकदमा खत्म नहीं हुआ था, इसलिए उनको घर के प्रबंध के लिए वहां पर जाना पड़ता था। उनका उदाहरण देकर अभिभावक लोग अपने बालकों को घर लौटा ले जाना चाहते थे। कुछ लड़कों को परीक्षा देने के लिए जोर देकर गृहस्थ लोग लौटा ले गये। स्वामी विवेकानंद इसका प्रतिवाद इसलिए नहीं कर पाते थे, क्योंकि वे स्वयं घर सम्हालते थे। अंततः मुकदमें में विजय हुई और इसके बाद दिसम्बर महीने से

घर का सम्बन्ध एकदम छोड़कर स्वामी विवेकानन्द मठ में आकर रहने लगे और जो युवा संन्यासी घर लौट गये थे, सबको प्रेरित करके मठ में बुला लिये।

गृहस्थ भक्तों ने युवा संन्यासियों से श्री रामकृष्ण देव का भस्मावशेष मांगकर उस पर मंदिर बनाने की बात कही। संन्यासी लोग देने से इनकार करने लगे; परन्तु स्वामी विवेकानन्द ने समझाकर उसे भक्तों को दिला दिया। उन्होंने संन्यासियों से कहा कि हमारे लिए गुरुदेव की थाती उनके उपदेश तथा उनकी दिव्य रहनी है। अंततः भक्तों ने ताम्रपात्र सहित उस भस्मावशेष को 'काकुरगाछी' के 'योगोद्यान' में स्थापित कर दिया।

वराहनगर के इस मठ की व्यवस्था के प्राणाधार थे स्वामी रामकृष्णानंद (शशी महाराज) जो स्वामी विवेकानंद के गुरुभाई थे। वे संन्यासी-गुरुभाइयों की, मां की तरह रक्षा करते थे।

स्वामी विवेकानंद सभी युवा-संन्यासियों को वैराग्य का जोश भरते, उपदेश करते, गीता पाठ करते-कराते और कभी-कभी गीता बंद करके अलग रख देते और कहते 'क्या होगा गीता पाठ करके'। 'गीता' का विलोम 'त्याग' चाहिए 'कामिनी-कंचन' का त्याग।

मठ में तीन कमरे थे, साधारण मकान था। संन्यासी भिक्षा कर लाते वही भोजन का आधार था। चावल का भात बना लेते और कुन्दरू के पत्ते को उबाल करके सब्जी बना लेते और युवा संन्यासी उसी से अपने पेट भर लेते। कई बार उन युवा संन्यासियों को पेट भर अन्न नहीं मिलता। कई बार उपवास ही रह जाना पड़ता। सुरेन्द्रनाथ मित्र को जब यह पता चला, तब वे अन्न के प्रबंध पर ज्यादा ध्यान देने लगे।

आश्रम में थाली-बरतन भी नहीं थे। मकान के पास वाले बगीचे में कुम्हड़े की बेलें तथा केले के पेड़ थे; परन्तु उसमें से एक-दो पत्ते लेते ही उसका उड़िया बागवान संन्यासियों को गाली देने लगता था। अतः विवश होकर संन्यासी लोग घुड़ियों के पत्ते पर रखकर साग-भात खाते और जैसे चार ग्रास खाते, उनके गले खुजलाने लगते थे।

कोई आकर संन्यासियों की परीक्षा लेना चाहता, कोई तर्क करता, किन्तु स्वामी विवेकानंद के सामने कोई ठहर नहीं पाता। स्वामीजी गुरुभाइयों से कहते—“अरे! ये कीड़े हैं। इनकी चिंता न करो कि ये क्या कहते हैं।”

कई संन्यासियों के मन में तीर्थभ्रमण की इच्छा उठने लगी। वे सोचने लगे कि शायद इसके लिए आज्ञा न मिले। अतः स्वामीजी की अनुपस्थिति में ही कुछ लोग मठ छोड़कर चले गये। बालक सारदाप्रसन्न (त्रिगुणातीतानंद) यह पत्र छोड़कर चले गये कि यहां रहने से घर का मोह खींचता है इसलिए वैराग्य की दृढ़ता के लिए मैं जा रहा हूं।

स्वामी विवेकानंद के मन में कुछ गुरुभाइयों का मनमाना व्यवहार देखकर क्षोभ हुआ। उन्होंने सोचा, ठीक है। मुझे भी इसकी चिंता क्यों करनी चाहिए। वे भी अन्य गुरुभाइयों के अनुरोधों की उपेक्षा करके भ्रमण के लिए निकल पड़े। वे 1888 ई० में बिहार तथा उत्तर प्रदेश में भ्रमण करते हुए काशी गये। वे वहां श्रीमत त्रैलिंगस्वामी जी तथा स्वामी भास्करानंद के दर्शन किये। बात-बात में स्वामी भास्करानंद तथा उनके शिष्यों ने श्री रामकृष्णदेव की आलोचना की। स्वामी विवेकानंद ने उनका प्रतिवाद किया और वे वहां से चल दिये। स्वामी जी भ्रमण करते हुए अयोध्या गये। वहां से पदयात्रा करते हुए लखनऊ, आगरा तथा वृन्दावन।

आगरा और वृन्दावन के बीच में स्वामी विवेकानंद जा रहे थे। रास्ते के पास एक आदमी तम्बाकू पी रहा था। स्वामीजी ने उसकी चिलम पीने के लिए मांगी। उसने कहा—“महाराज! मैं मेहतर हूं।” स्वामीजी आगे बढ़ गये। परन्तु उनके मन में अब यह विचार उठने लगे कि मैंने तो जाति, कुल, मान—सभी को त्यागकर संन्यास लिया है, तो मेहतर को नीच क्यों समझा! स्वामी जी ने लौटकर तथा मेहतर के हाथों से चिलम लेकर धूम्रपान किया।¹

स्वामीजी वृन्दावन में कुछ रहकर हाथरस गये। हाथरस रेलवे स्टेशन के स्टेशन मास्टर शरच्चन्द्र गुप्त थे। उन्होंने स्वामीजी को देखा। वे उन्हें अपने घर बुला लाये। उनकी सेवा तथा सत्संग से लाभ लेने लगे। शरच्चंद्र बाबू उत्तम

1. स्वामी विवेकानंद मांस, मछली, सिगरेट, सिगार आदि ग्रहण करते थे, किन्तु इन बातों को लेकर उनके सद्गुणों के महत्त्व को कम आंकना ठीक नहीं। उनके गुरु श्री रामकृष्णदेव कभी-कभी उन्हें ग्रहण कर लेते थे इसलिए वे स्वामीजी को भी नहीं रोक सके और जब बात बड़े पुरुषों द्वारा मान्य हो गयी तो अनुयायियों का उस पर चलना सहज ही है। यदि श्री रामकृष्णदेव स्वामी विवेकानन्द को शुद्ध शाकाहार का उपदेश दिये होते और धूम्रपान का निषेध किये होते, तो स्वामीजी जैसे तेजवान पुरुष इन तुच्छ चीजों को छोड़ने में जरा भी देर नहीं करते।

उसी बंगाल में श्री चैतन्य महाप्रभु की साधु-परम्परा में लहसुन-प्याज तक नहीं खाये जाते, मछली-मांस, सिगरेट, सिगार का प्रश्न ही क्या? आज उनकी परम्परा में हजारों विदेशी नर-नारी शुद्ध शाकाहारी हैं। इस परम्परा को आज 'हरे राम हरे कृष्ण' के नाम से लोग जानते हैं। इन्होंने यह भी भ्रम दूर कर दिया है कि शाकाहारी बनकर विदेशों में प्रचार नहीं हो सकता। अर्थात् शाकाहारी सम्प्रदाय भी विदेशों में फैल सकता है। चीन के लोग घोर मांसाहारी होते हैं, परन्तु वहां के कुछ बौद्ध शुद्ध शाकाहारी बताये जाते हैं। वस्तुतः मांस, मछली, अंडे और शराब, सिगरेट आदि सभी नशीली चीजों का त्याग बहुत आवश्यक है।

जिज्ञासु थे। उन्होंने स्वामीजी से दीक्षा चाही। स्वामीजी ने कहा “संन्यासी बनना पड़ेगा।” उन्होंने स्वीकार किया और अपने माता-पिता से कहकर स्वामीजी के चरणों में अपने आपको अर्पित कर दिया। इस प्रकार स्वामी विवेकानंद का पहला संन्यासी शिष्य शरच्चंद्र बाबू हाथरस में बने और स्वामीजी के आज्ञानुसार अपने हाथरस स्टेशन पर उन्होंने कुलियों के पास जाकर भिक्षा मांगी। शरच्चंद्र का नाम रखा गया ‘सदानंद’।

स्वामी विवेकानंद कलकत्ता लौटकर वराहनगर मठ और बागबाजार बलराम बसु के मकान में एक वर्ष बिताये। स्वामी विवेकानंद के दो और छोटे भाई तथा एक बहिन थी और माता तो थी ही। मझला भाई कालेज में पढ़ता था। कलकत्ता में रहकर घर की चिंता हो जाती है, ऐसा सोचकर स्वामीजी ने कलकत्ता छोड़ देने की सोची।

स्वामीजी बिहार होते हुए उत्तर प्रदेश के एक नगर गाजीपुर में 1890 ई० में पहुंचे, जहां एक योगी संत पवहारी बाबा रहते थे। उनसे उन्होंने योग की दीक्षा चाही; किंतु पीछे स्वयं उनको ग्लानि हुई कि श्री रामकृष्णदेव जैसे गुरु की शरण में होकर अब अन्य से किसी प्रकार की दीक्षा उचित नहीं है। वैसे पवहारी बाबा से स्वामीजी जीवनपर्यंत काफी प्रभावित रहे।

स्वामीजी काशी, ऋषीकेश, उत्तराखण्ड, पंजाब, राजस्थान आदि पहुंचे। स्वामीजी ने पहले वराहनगर मठ में दो वर्षों तक पाणिनि के अष्टाध्यायी का अध्ययन किया था। उन्होंने जयपुर में वहां के राजपुरोहित से पुनः दो सप्ताह तक अष्टाध्यायी का अभ्यास किया। वे जयपुर से अजमेर तथा पुनः खेतरी पहुंचे। खेतरी राजा निःसंतान थे। स्वामीजी के आशीर्वाद के बाद उन्हें संतान प्राप्त होने की योग्यता पड़ी थी इसलिए खेतरी के राजा स्वामीजी के लिए बहुत श्रद्धालु हो गये थे। फिर स्वामीजी अहमदाबाद, लिंबड़ी, जूनागढ़, भोज, वेरावल, प्रभास, सोमनाथ, पोरबन्दर, मांडवी, पालीटाना, बड़ौदा, काठियावाड़, बम्बई, मार्मागोआ, बेलगांव, मैसूर, कोची, त्रावणकोर, त्रिवेन्द्रम, पांडचेरी¹, कन्याकुमारी, मद्रास आदि स्थलों में अकेले घूमते रहे तथा गरीबों की झोपड़ियों से लेकर राजा-महाराजाओं के यहां जाकर अपने ज्ञान की चर्चा करते रहे। इस क्रम में ट्रेन में बालगंगाधर तिलक भी मिले जो उस समय नवयुवक थे। इसी समय अमेरिका के शिकागो नगर में विश्वधर्म सम्मेलन था और मद्रास के युवकों एवं खेतरी के राजा आदि के सहयोग से स्वामीजी ने बम्बई से जल-

1. पांडचेरी में एक हिन्दू पण्डित ने जब यह समझा कि स्वामी विवेकानंद विदेश यात्रा पर जाने वाले हैं तब उसने स्वामीजी से बड़ा विवाद किया। यहां तक कि उसने उन पर आगबबूला होकर गाली भी बकी।

जहाज के द्वारा शिकागो के लिए प्रस्थान किया। प्रस्थान का दिन 31 मई, 1893 ई० था।

5. स्वामीजी अमेरिका में

स्वामीजी जल जहाज द्वारा कोलम्बो, मलाया, सिंगापुर, हांगकांग, जापान, याकोहामा होते हुए वैकुवर पहुंचे। वहां से ट्रेन द्वारा तीन दिनों में शिकागो पहुंचे, जहां सर्वधर्म सम्मेलन था। शिकागो की सड़कों पर गेरुवे वस्त्र में स्वामीजी को देखकर लोग घूरकर देखते थे, हंसी करते थे। वह धर्मसभा कई महीने के बाद के लिए टल गयी थी। प्रतिनिधि के रूप में धर्मसभा में जाने के लिए आवेदन पत्र भेजने का समय भी बीत गया था। उनके पास के रुपये खर्चीले होटल में समाप्त हो चले थे। स्वामीजी अपना भविष्य अंधकारमय देखने लगे। उनका भावुक मन विचलित हो गया। वे सोचने लगे—“कुछ हठधर्मी युवकों के परामर्श को मानकर मैं क्यों अमेरिका आया!”¹

स्वामीजी शिकागो छोड़कर बोस्टन चले गये। वहां उन्हें एक वृद्ध तथा भद्र महिला मिल गयी। उसने उन्हें अपने घर में आश्रय दिया। स्वामीजी लिखते हैं—

“यहां पर रहने से मेरी पहली जो सुविधा हुई वह यह कि प्रतिदिन मेरा जो एक पौंड के हिसाब से खर्च हो रहा था वह बच रहा है और उनका लाभ यह है कि वे अपने मित्रों को आमंत्रित कर भारत से आये हुए एक अद्भुत जीव को दिखा रही हैं। इन सब कष्टों को सहन करना ही होगा। मुझे इस समय भूख, शीत, विचित्र पोशाक के कारण रास्ते के लोगों की हंसी आदि के साथ लड़ते हुए चलना पड़ रहा है।”²

स्वामीजी ने सोचा कि अमेरिका में यदि वेदांत के प्रचार की सुविधा न मिली, तो मैं इंग्लैण्ड चला जाऊंगा और यदि वहां भी सुविधा न मिली तो भारत लौट जाऊंगा।

स्वामीजी को शिकागो की धर्मसभा में सम्मिलित होने की कोई आशा न थी। वे मन से काफी निराश हो गये थे, फिर भी साहस नहीं छोड़े थे।

उसी महिला के घर पर रहते समय स्वामीजी को हार्वर्ड विश्वविद्यालय के ग्रीक भाषा के प्रोफेसर मि० जे० एच० राइट महोदय मिल गये। उन्होंने स्वामीजी को साहस दिया कि आप शिकागो धर्मसभा में अवश्य जायें। आप वहां सफल होंगे। उन्होंने उक्त महासभा से सम्बन्धित अपने मित्र मि० बनी के

1. विवेकानंद चरित, पृष्ठ 217।

2. वही, पृष्ठ 218।

नाम एक पत्र लिखकर स्वामीजी को दे दिया। परिचय के साथ उन्होंने उस पत्र में यह भी लिख दिया—“मेरा विश्वास है कि यह अज्ञात हिन्दू संन्यासी हमारे सभी पण्डितों को एकत्रित करने पर जो कुछ हो सकता है उससे भी अधिक विद्वान है।”¹

स्वामीजी ने महिलाओं की राय से केवल सभा में भाषण करने के लिए गेरुवे रंग की पगड़ी और चोगे को रखकर अन्य समय के लिए एक काला कोट बनवा लिया और वे समय आने पर शिकागो के लिए चल पड़े। वे शिकागो पहुंचकर जिनके नाम से परिचय पत्र था उनका आफिस नहीं ढूंढ़ सके। परिचय पत्र भी खो गया था। सड़क पर जिनसे पूछते, वह स्वामीजी को नीग्रो समझकर घृणा से अपना मुख फेर लेता। वे ठहरने के लिए होटल भी नहीं खोज पाये। अंततः वे रात में कहीं आश्रय न पाकर रेलवे के माल-गोदाम के सामने पड़े एक बड़े पैकिंग बाक्स में घुस गये। रात में बर्फ पड़ती थी, ठंडी हवा भी चलती थी। बाक्स में घोर अंधकार था। उनके पास ठंडी निवारण के लिए पर्याप्त वस्त्र भी नहीं थे। उन्होंने किसी प्रकार रात काटी।

स्वामीजी सुबह निकलकर सड़क पर चलने लगे। वे बहुत भूखे होने से चलने में असमर्थ हो रहे थे। वे थोड़े से भोजन के लिए द्वार-द्वार पर भिक्षा मांगने लगे। स्वामीजी पर किसी ने दया नहीं की। कोई गाली देकर द्वार से हटाया, तो कोई घृणा से दरवाजा बन्द कर लिया और कोई अपने द्वार से बल प्रयोग करके हटा दिया। स्वामीजी थककर रास्ते के किनारे बैठ गये। इतने में सामने के एक विशाल भवन का दरवाजा खुला और एक अपूर्व सुन्दरी महिला निकली तथा उसने स्वामीजी से पूछा—“महाशय! क्या आप धर्मसभा के प्रतिनिधि हैं?” स्वामीजी ने अपनी बातें कह सुनायीं। वह भद्र महिला स्वामीजी को अपने घर में ले गयी और अपने नौकरों को उनकी सेवा करने की आज्ञा दी तथा स्वामीजी से उसने कहा कि मैं खुद आपको धर्मसभा में ले चलूंगी। इस महिला का नाम था “मिसेज जार्ज डब्ल्यू हेल”। यह महिला संभ्रांत और धनी घर की थी। इसी के सहारे स्वामीजी धर्मसभा में सम्मिलित हो सके।

उस धर्मसभा में भारत से अन्य प्रतिनिधि भी गये थे। ब्राह्मसमाज के प्रतापचंद्र मजुमदार, बम्बई के नगरकर, जैन समाज के वीरचंद्र गांधी, एनी-बेसेण्ट व चक्रवर्ती थियोसोफी के प्रतिनिधि थे। बौद्धमत की तरफ से अनागरिक धर्मपाल थे।

पहले दिन एक के बाद एक प्रतिनिधि का सभा में परिचय कराया जाता था और वे प्रतिनिधि दो-चार मिनट में थोड़ा बोलकर बैठ जाते थे। स्वामीजी का दिल धड़क रहा था। इतनी भीड़ में वे कभी नहीं बोले थे। किंतु समय

1. वही, पृष्ठ 221।

आने पर वे भी उठकर खड़े हुए और “अमेरिका निवासी भाइयो तथा बहनो!” का सम्बोधन करके थोड़ा बोलकर बैठ गये। उनके छोटे भाषण का जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

धर्मसभा 11 सितम्बर से 27 सितम्बर तक चली। अन्य प्रतिनिधियों के साथ स्वामी विवेकानंद के ओजस्वी भाषण होते। उनके भाषण का प्रभाव पड़ा। किन्तु कुछ मिशनरियां उनकी गहरी आलोचना में लग गयीं। यहां तक कि भारत की मिशनरियां उनकी निंदा करने लगीं—“विवेकानंद नीच जाति के होने से जातिच्युत हैं। वे हिन्दू धर्म की चर्चा करने के अयोग्य हैं” आदि।

अमेरिका की जनता स्वामीजी के उपदेशों के प्रति आकर्षित हुई। इससे इसाई समाज के संकुचित पादरी बौखला गये। वे स्वामीजी को दुश्चरित्र तक कहकर उनकी निंदा करने लगे। वे सुंदरी स्त्रियों को धन देकर स्वामीजी को विमोहित करने का भी षड्यंत्र करने लगे। वे कई जगह स्वामीजी के कार्यक्रमों को, कार्यक्रम कराने वालों को भड़काकर, कैंसिल करवा देते। कई बार स्वामीजी जब निमंत्रित घर पर पहुंचते, तो घर पर फाटक बंद होता तथा घर वाले कहीं बाहर चले गये होते थे। परन्तु पीछे वे स्वामीजी से जाकर क्षमा मांगते थे और बताते थे कि उन्हें पादरियों द्वारा भड़काया गया है। किंतु आम जनता उनसे प्रभावित होकर उनके भाषण जगह-जगह कराने लगी और अमेरिका में सैकड़ों लोग उनके शिष्य बन गये। स्वामीजी अनुकूलता-प्रतिकूलता को सहकर दृढ़ बने रहे।

अमेरिका के ‘न्यूयार्क हेरल्ड’ नामक प्रसिद्ध पत्र ने लिखा—“शिकागो धर्मसभा में विवेकानंद ही सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं। उनका भाषण सुनकर ऐसा लगता है कि धर्ममार्ग में इस प्रकार के समुन्नत राष्ट्र (भारतवर्ष) में हमारे (इसाई) धर्मप्रचारकों को भेजना निर्बुद्धिता मात्र है।”¹

स्वामीजी कुछ बनाकर नहीं कहते थे। वे जो सत्य समझते थे, बेधड़क कहते थे। इसलिए कितने लोग उनसे रुष्ट हो जाते थे; परन्तु वे कहते थे—“यह मूर्ख जगत मुझे जो कुछ करने के लिए कह रहा है, यदि मैं वैसा करने जाऊं तो मुझे एक निम्न श्रेणी के जीव विशेष में परिणत हो जाना होगा, उसके बजाय तो मृत्यु सहस्रगुणी श्रेयस्कर है। मुझे जो कुछ कहना है, मैं उसे अपने ही भाव में कहूंगा। मैं अपने वाक्यों को न तो हिन्दू ढांचे में ढालूंगा, न इसाई ढांचे में और न किसी दूसरे ढांचे में ही। मैं अपनी बातों को केवल अपने ही ढांचे में ढालूंगा।”²

1. वही, पृष्ठ 231।

2. वही, पृष्ठ 240।

भारत के कुछ सनातनधर्मी पंडित भी स्वामीजी की निंदा पर उतर आये। प्राचीन हिंदू सम्प्रदाय का मुखपत्र “बंगवासी” तो स्वामी विवेकानंद की निंदा के प्रचार पर ही लग गया। किंतु दूसरी तरफ भारत के अनेक लोगों ने स्वामीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की। रामनद के राजा भास्कर वर्मा तथा खेतरी के राजा अजित सिंह बहादुर ने स्वामीजी के अमेरिका प्रचार की सफलता के उपलक्ष्य में सभाएं कीं। कलकत्ता में भी सभाएं हुईं। स्वामीजी को मानपत्र भेजे गये। स्वामीजी ने उत्तर में लिखा था—

“मैंने यह निश्चित रूप से समझ लिया है कि कोई व्यक्ति या जाति दूसरे से विच्छिन्न होकर जीवित नहीं रह सकती। भ्रांत श्रेष्ठत्व के अभिमान अथवा पवित्रता के बोध से जहां भी इस प्रकार की चेष्टा हुई है वहीं परिणाम अत्यन्त शोचनीय हुआ है। मैं समझता हूं, दूसरों के प्रति घृणा की नींव पर कुछ प्रथाओं की दीवार उठाकर अलिप्तता का अवलम्बन ही भारत के पतन व उसकी दुर्गति का कारण है। प्राचीनकाल में हिन्दुओं को पड़ोस वाले बौद्ध-सम्प्रदायों के सम्मिश्रण से रोकने के लिए ही उस प्रकार की व्यवस्था का अवलम्बन किया गया। इस व्यवस्था की यथार्थता को प्राचीनकाल में अथवा आजकल भी, किसी भी भ्रांत युक्ति के द्वारा प्रमाणित करने की चेष्टा क्यों न की जाये, पर जो दूसरों से घृणा करेगा, उसका पतन अवश्यंभावी है, यही निश्चित नीति है। फलतः प्राचीन जाति-समूह के बीच में जो अग्रगण्य हुए थे—आज तो यह केवल किवदंती के रूप में विद्यमान है—वे आज सभी की घृणा के पात्र हैं। हमारे पूर्वपुरुषों की भेदनीति के परिणाम में क्या स्थिति हुई है, हम उसके जीते-जागते उदाहरण हैं।”¹

स्वामीजी ने अमेरिका में उस समय के प्रसिद्ध वक्ता एवं लेखक भौतिकवादी राबर्ट इंगरसोल तथा जर्मनी के प्रसिद्ध वेद विद्वान प्रो० मैक्समूलर से मुलाकात की और परिचय हुआ।

स्वामीजी इसी बीच इंग्लैण्ड भी गये। वहां इंग्लैण्ड वालों द्वारा उन्होंने अधिक निष्छल व्यवहार पाया। वहां भी वे करीब तीन महीने रहे तथा वहां के लोगों ने उनके भाषण सुने तथा उनके शिष्य भी हुए।

एक भाषण की कम्पनी ने स्वामीजी के प्रति अमेरिका वालों का आकर्षण देखकर उन्हें रुपये पर भाषण देने का करार किया। परन्तु आगे चलकर स्वामीजी के भाषण से कम्पनी वालों ने तो खूब रुपये कमाये, परन्तु स्वामीजी को निश्चित रुपये नहीं दिये। स्वामीजी को ग्लानि हुई और वे कम्पनी को त्यागकर निःशुल्क भाषण देने लगे।

1. वही, पृष्ठ 245।

आगे चलकर स्वामीजी ने देखा कि भाषण से लोगों में सामाजिक उत्तेजना आ जाती है, किन्तु स्थायी लाभ के लिए स्थायी काम करना चाहिए; अतः वे वहाँ के लोगों में सत्संग के रूप में स्थायी भी काम करने लगे। वे प्रचार से थककर एकांत निवास भी किये और अंततः वहाँ करीब चार वर्षों तक रहकर सन् 1896 ई० के 30 दिसम्बर को जल जहाज से भारत लौट पड़े। उनके साथ अनेक अमेरिकन एवं अंग्रेज शिष्य भी थे।

वेदांत प्रचार के साथ भावुक विवेकानंद का लक्ष्य था कि विदेश से धन लाकर भारत की गरीबी दूर करूंगा, परन्तु यह कहां सफल होने वाला था। अतः उन्होंने अपनी विदेशयात्रा सफल नहीं मानी।¹

स्वामीजी कोलम्बो पहुंचे। वहाँ के हिन्दुओं ने उनका जोरदार स्वागत किया। शिकागो तथा अमेरिका-इंग्लैण्ड आदि में स्वामीजी के दिये गये भाषण का प्रभाव श्रीलंका में भी व्याप्त था। उनका श्रीलंका में जगह-जगह जोरदार स्वागत हुआ। उनको कई दिनों तक वहाँ जगह-जगह भाषण देने पड़े।

उसके बाद वे भारत में मद्रास आये। रामनद के राजा भास्कर वर्मा बहादुर ने उनका स्वागत किया। जगह-जगह हजारों लोग उनके दर्शन के लिए उमड़े। मद्रास में राजा ने तथा कलकत्ता में भी अनेक सम्प्रदांत लोगों ने स्वामीजी के रथ को स्वयं खींचा। कलकत्ता में भी उनका जोरदार स्वागत हुआ।

स्वामीजी ने अपने भाषणों में राष्ट्रप्रेम, पूरी मानवता तथा विशेषकर तथाकथित निम्न जातियों को उठाने की जोरदार अपील की। उन्होंने “भद्र वर्णाश्रमी ब्राह्मण-पंडितों की कुयुक्ति व कुतर्कों का खण्डन किया।...कुल-गुरुप्रथा को मूर्ख शास्त्रज्ञानविहीन ब्राह्मणों व वैष्णवों का धार्मिक व्यवसाय तथा अवैदिक व अशास्त्रीय बताया तथा तांत्रिक साधना के नाम से इंद्रियों की जो दासता पनप रही है उसकी भी तीव्र आलोचना की।”²

स्वामीजी ने जनता को बता दिया कि वे कुसंस्कार एवं कट्टरपन के साथ समझौता नहीं करेंगे। इसके बाद उन्होंने कलकत्ता में भाषण नहीं किया। वे व्यक्ति विशेष को उपदेश देने लगे।

6. मिशन की स्थापना

आलमबाजार मठ में स्वामीजी ने भक्तों तथा संन्यासियों के बीच में 1 मई, 1897 ई० को “श्री रामकृष्ण मिशन” की स्थापना करने के लिए बैठक बुलायी और सर्वसम्मत से प्रस्ताव पास होकर मिशन का गठन हो गया, जिसके अध्यक्ष स्वामीजी स्वयं हुए।

1. वही, पृष्ठ 316।

2. वही, पृष्ठ 350-51।

कुछ गुरुभाइयों का इस पर आक्षेप हुआ, कि श्रीरामकृष्ण का तो आदर्श था ध्यान, जप, वैराग्यादि साधना द्वारा आत्मसाक्षात्कार करना। जनसेवा, रोगीसेवा, मठस्थापन, देश-विदेश में प्रचार—यह सब साधकों को बहिर्मुख बनायेगा। स्वामी विवेकानन्द ने इन बातों का उत्तर देकर सबको समझाया। उन्होंने वैराग्य, ज्ञान के साथ कर्म तथा जनसेवा का महत्त्व बताकर सब का भ्रम दूर कर दिया। उसके बाद किसी को संदेह न हुआ।

स्वामीजी ने पुरुष-संन्यासी मठ की स्थापना के साथ अलग नारियों के लिए संन्यासिनी-मठ की स्थापना पर भी विचार किया।

अधिक श्रम से स्वामी जी का स्वास्थ्य गिरने लगा। वे स्वास्थ्य-सुधार के लिए कलकत्ता से अलमोड़ा गये। उनका वहां स्वागत हुआ।

भारत में उनका जोरदार स्वागत देखकर अमेरिका की कुछ मिशनरियां स्वामीजी की निंदा में तुल गयीं। शिकागो धर्मसभा के सभापति डॉ० बैरोज साहब भी स्वामी जी की निंदा करने लगे। समाचार पत्रों में भी उनकी निंदा छपने लगी। स्वामीजी इन सबसे विचलित नहीं हुए। संसार में सभी क्रांतिकारी पुरुषों को निंदा, अपयश आदि भी सहने पड़े हैं, यह जानकर वे धैर्यवान बने रहे।

स्वामीजी अलमोड़ा, पंजाब, कश्मीर, बरेली, अम्बाला, अमृतसर, रावलपिंडी, सियालकोट के कार्यक्रम करते हुए लाहौर पधारे।

पंजाब में तथा विशेष रूप से लाहौर में स्वामी विवेकानन्द आर्यसमाज से पूर्ण परिचित हुए। लौहपुरुष स्वामी दयानन्द (1824-1883 ई०) ने 1875 ई० में बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी और 1877 ई० में लाहौर में उसके नियम बनाये थे। आर्यसमाज नामक एक सबल संस्था ने उत्तरी भारत में धार्मिक आंदोलन का एक भूचाल ला दिया था। स्वामी विवेकानन्द को इसका लाहौर में बोध हुआ। अनेक आर्यसमाजी विद्वान स्वामी विवेकानंद से बातचीत करते रहे, सैद्धांतिक भेद को लेकर भी खूब तर्क-वितर्क चलते रहे, किन्तु आर्यसमाज के विद्वानों ने बड़े सौहार्दपूर्वक उनसे व्यवहार किया।

“दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज” के अध्यक्ष आर्यसमाजी हंसराज जी एक दिन वार्तालाप में वेदों के अर्थों के विषय में अपनी कट्टरता व्यक्त कर रहे थे। स्वामी विवेकानंद ने के कहा—

“लालाजी, आप लोग जिस विषय के बारे में इतना आग्रह प्रकट कर रहे हैं, उसे हम Fanaticism अथवा कट्टरपन कहते हैं। मैं यह जानता हूँ कि इसके द्वारा संप्रदाय को शीघ्र विस्तृत बनाने में सहायता होती है और मैं यह भी जानता हूँ कि शास्त्र के कट्टरपन की अपेक्षा मनुष्य के कट्टरपन (इस प्रकार का प्रचार कि व्यक्ति विशेष को अवतार मानकर उनकी शरण लेने से ही मुक्ति

होगी) के द्वारा और भी आश्चर्यजनक तथा शीघ्रता से सम्प्रदाय का विस्तार होता है। और मेरे हाथ में यह शक्ति भी है। मेरे गुरुदेव श्री रामकृष्ण का ईश्वरावतार के रूप में प्रचार करने के लिए मेरे अन्य सभी गुरुभाई-गण कटिबद्ध हैं। एकमात्र मैं ही उस प्रकार के प्रचार का विरोधी हूँ, क्योंकि मेरा दृढ़ विश्वास है—मनुष्य को उसके विश्वास व धारणा के अनुसार उन्नति करने देने पर यद्यपि बहुत ही मंद गति से उन्नति होती है, परन्तु जो उन्नति होती है वह बिलकुल पक्की होती है।¹

ब्राह्मसमाज के 'केशवचंद्र' ने स्वामी दयानंद को कलकत्ता बुलाया था यह जानकर कि दयानन्द स्वामी मूर्तिपूजा तथा जाति भेद के विरोधी हैं, तो हमारा तथा उनका पट जायेगा, परन्तु अन्ततः बात पटी नहीं। क्योंकि ब्राह्मसमाज ने वेद की अपौरुषेयता की मान्यता को 1850 में ही त्याग दिया था। स्वामी दयानन्द 15 दिसम्बर, 1872 से 15 अप्रैल, 1873 तक कलकत्ता में रहे थे। इसी समय श्री रामकृष्ण परमहंस ने स्वामी दयानन्द के दर्शन किये थे। परन्तु मूर्तिपूजा विरोधी स्वामी दयानन्द के विचार मूर्तिपूजक रामकृष्ण देव को नहीं जंचे थे।

स्वामी विवेकानन्द के इसी लाहौर प्रवास के समय उनका एक कॉलेज के गणित के युवा प्रोफेसर तीर्थ राम गोस्वामी से सम्पर्क हुआ था। इस प्रोफेसर ने स्वामीजी के प्रवचन आदि में प्रबंधक का काम किया था। स्वामीजी ने इस प्रोफेसर को वैराग्य तथा वेदांत प्रचार करने की प्रेरणा दी थी। यही तीर्थराम गोस्वामी युवक प्रोफेसर थोड़े दिनों में विरक्त होकर स्वामी रामतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और अमेरिका आदि में प्रचार किया।

स्वामी विवेकानन्दजी का खेतरी के राजा के निमन्त्रण से वहां (राजपूताना) जाना हुआ। उन्होंने वहां के भाषण में व्यंग्य में कहा था.....हम न हिन्दू हैं, न वेदांती हैं, हम हैं 'छुआछूत पंथी', चौका हमारा मंदिर है, पकाने का बरतन उपास्य देवता तथा 'न छूओ न छूओ' हमारा मंत्र।

स्वामीजी किशनगढ़, अजमेर, जोधपुर, इन्दौर होकर खण्डवा पहुंचे। वे वहां बीमार हो गये। अतः खण्डवा से स्वामीजी कलकत्ता लौट गये।

7. बेलुड़ मठ स्थापन 1898 ई०

स्वामीजी का संकल्प था कि कलकत्ता में गंगातट पर एक स्वतन्त्र मठ स्थापित हो। निदान गंगा के पश्चिम तट पर बेलुड़ गांव की बड़ी जमीन खरीद ली गयी। उसमें एक पुराना मकान भी था। वहां पहले नावकाओं के अड्डे थे। जमीन समतल बनाकर मठ स्थापित हुआ जो आज श्री रामकृष्ण मिशन का

1. विवेकानन्द चरित, पृष्ठ 383-384।

केन्द्र है। इस जमीन के खरीदने में आर्थिक सहयोग किया स्वामीजी की शिष्या कु० हेनरिएटा मूलर ने। श्रीमती ओलीबुल ने मठ निर्माण में धन दिया तथा एक लाख रुपये मठ के खर्च के लिए दिये। उधर हिमालय में सेविअर दम्पति के सहयोग से एक मठ स्थापित हुआ। मद्रास में भी मठ स्थापित हुआ।

विदेश से कु० नोबल ने स्वामीजी को पत्र देकर उनसे अपने आप को भारत आने तथा ब्रह्मचर्यव्रत लेकर मठ में रहने की आज्ञा मांगी। स्वामीजी ने लिखा—“निर्धनता, अधःपतन, कूड़ाककट, फटे-मैले वस्त्र पहने हुए नर-नारियों को देखने की यदि इच्छा हो तो चली आओ। दूसरी किसी चीज की आशा करके न आना। हम तुम लोगों की हृदयविहीन आलोचना को सहन नहीं कर सकते।”¹ कु० नोबल आयीं और ये ही ‘भगिनी निवेदिता’ के नाम से एक साधिका जीवनभर रहीं। निवेदिता तथा स्वामीजी के विचारों में काफी दिनों तक फर्क बना रहा। स्वामीजी उनकी कई बार गहरी आलोचना कर देते थे। परन्तु अन्त में निवेदिता पूर्णतया स्वामीजी के अनुसार ढल गयीं।

स्वामीजी ने इसके बाद पुनः एक बार उत्तराखण्ड की यात्रा की। उन्होंने अलमोड़ा में ही गाजीपुर के पवहारी बाबा तथा अपने लिपि संकेत लेखक गुडविन के शरीरांत के समाचार सुने।

8. पुनः विदेश यात्रा

20 जून, 1899 ई० में स्वामीजी पुनः जल-जहाज से अमेरिका आदि देश गये। साथ में स्वामी तुरीयानन्द तथा भगिनी निवेदिता थीं। स्वामीजी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। अब की बार वे विदेश जाकर कोई विशेष कार्य नहीं कर सके, किन्तु कुछ-न-कुछ कार्य तो होता ही रहा। उनका मन बीच-बीच में काफी उदास रहता था। अंततः उनको पता चला कि मायावती (अलमोड़ा) मठ के स्थापक श्री सेवियर का देहांत हो गया है। वे यह जानकर तुरन्त भारत लौट पड़े। वे अबकी बार जहाज से बम्बई उतरकर ट्रेन द्वारा सीधे कलकत्ता आ गये।

9. पुनः भारत में

8 दिसम्बर, 1900 ई० की 8-9 बजे रात को स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से लौटकर बेलुड़ मठ के दरवाजे पर खड़े हैं। मठ में भोजन के लिए घंटी लगी है। इतने में बाग का माली आया और कहने लगा—“एक साहब आये हैं, दरवाजे की चाबी दीजिये खोलना है।” दरवाजा खोलने पर साहब गाड़ी में नहीं दिखे। स्वामीजी तो भोजनालय के सामने खड़े थे। स्वामी प्रेमानन्द ने दीपक लेकर देखा तो स्वामी विवेकानन्द खड़े हैं। स्वामीजी ने जोर से हंसते

1. वही, पृष्ठ 398।

हुए कहा—“भाई, तुम्हारे भोजन करने की घंटी मैंने सुनी तो दीवार फांदकर भीतर आ गया, अन्यथा भोजन मिलना कठिन हो जाता।” सारा साधु तथा ब्रह्मचारी समाज आनंदित हो गया। खिचड़ी बनी थी। उन्होंने उसे बड़े प्रेमपूर्वक खाया।

समय कितना परिवर्तनशील होता है! पहली बार स्वामी जी जब विदेश से भारत लौटे थे तब मद्रास तथा कलकत्ता में उनका कितना जोर-शोर से स्वागत हुआ था और अबकी बार वे चुपचाप बेलुड़ मठ के भोजनालय के सामने आकर अकेले खड़े हो गये। किन्तु ज्ञानी के लिए सब समान है।

मायावती के सेवियर जी के निधन से स्वामी जी वहां (अलमोड़ा) शीघ्र चले गये। उन्होंने सेवियर की पत्नी को सांत्वना दी और मठ का प्रबन्ध देखा।

“आश्रम के कुछ संन्यासियों ने मिलकर एक कमरे में श्रीरामकृष्ण की मूर्ति की स्थापना की थी—वहां पर रोज पूजा, भोग, भजन आदि होते थे। सहसा एक दिन उस पर स्वामी जी की दृष्टि पड़ी। इस बाह्यपूजा को देखकर उन्होंने भला-बुरा कुछ न कहा, परन्तु सायंकाल जब अग्निकुंड के सम्मुख सब लोग एकत्रित हुए तो उस समय वे ओजस्वी भाषा में बाह्यपूजा की असारता प्रमाणित करने लगे। उन्होंने बहुत दिन पहले ही अपना यह उद्देश्य व्यक्त किया था कि अद्वैत आश्रम में किसी प्रकार की बाह्य पूजा का अनुष्ठान न रहे।

“परन्तु आज इसके विपरीत भाव को देखकर स्वामीजी कुछ क्षुब्ध हुए। उन्होंने अद्वैत आश्रम में बाह्यपूजा की अनावश्यकता के सम्बन्ध में तीव्रभाषा में बहुत कुछ तो कहा, परन्तु सहसा ठाकुर-घर को उठा देने का निर्देश न दिया। अधिकार का प्रयोग करना अथवा किसी के मन पर आघात करना उन्होंने उचित न समझा। स्वामीजी के मन में यही इच्छा थी कि जिन्होंने श्रीरामकृष्ण देव की मूर्ति की स्थापना की है वे अपनी भूल समझकर उसका संशोधन कर लेंगे। स्वामी स्वरूपानन्द तथा श्रीमती सेवियर ने स्वामी जी के उद्देश्य को भलीभांति समझकर अद्वैत आश्रम के नियमानुसार श्रीरामकृष्ण देव की पूजा बन्द कर दी।”¹

स्वामी जी बेलुड़ मठ लौट आये। वे आश्रम के छोटे-छोटे काम भी करते थे; जैसे आश्रम की घास साफ करना, झाड़ू लगाना, भोजन पकाना आदि। स्वामीजी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। उनको दमा भी जोर पर था।

स्वामी विवेकानन्द को बचपन में कोई बड़ा रोग हो गया था। अतः उनकी माता² ने माना था “मेरा बच्चा अच्छा हो जाय तो कालीघाट के कालीमंदिर में

1. वही, पृष्ठ 489।

2. स्वामी विवेकानन्द के देहांत के बाद उनकी माता नौ वर्षों तक जीती रहीं। उनका 25 जनवरी 1911 ई० को निधन हुआ।

विशेष पूजा दूंगी और श्री मंदिर में बच्चे को लोटपोट कराऊंगी।” परन्तु यह बात उनकी माताजी भूल गयी थीं। जब स्वामी जी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में बहुत अस्वस्थ चल रहे थे, तब उनकी माता को उक्त बात की याद आयी और उन्होंने स्वामी जी से कहा। स्वामीजी ने माता जी की बात सुनकर कालीघाट की आदि गंगा में स्नान करके गीले कपड़े से काली-मन्दिर में तीन बार लोटपोट किये और फिर होम भी किये।

4 जुलाई, 1902 ई० को स्वामी जी का रात में देहांत हो गया।

10. उपसंहार

स्वामी विवेकानन्द एक तो भावुक हृदय थे, दूसरी खास बात थी श्री रामकृष्ण देव उन्हें मिल गये थे जो एक भक्त-हृदय देव-पूजक थे। अतः स्वामी विवेकानन्द कालीपूजा, दुर्गापूजा या कुछ अनुष्ठान कर लेते थे, अन्यथा वे हृदय से गलत रूढ़ियों के विरोधी थे। यदि स्वामी जी को श्री रामकृष्ण देव जैसे भावुक भक्तहृदय संत न मिले होते तो स्वामी विवेकानन्द साधु होकर भी विद्रोही संत होते। श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदार ने ‘विवेकानन्द चरित’ में लिखा भी है—“सत्यान्वेषी विवेकानन्द यदि युवावस्था में परम कारुणिक श्रीरामकृष्ण देव को गुरु के रूप में न पाते, तो सम्भव है हम उन्हें दयानन्द की तरह विद्रोही देखते।”

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू शब्द को जगह-जगह काफी श्रेय दिया है। इसमें कारण समसामयिक वातावरण है। कलकत्ता में स्थापित ब्राह्मसमाज जिसमें विद्वानों का जमघट था, उसके द्वारा हिन्दू शब्द एवं समाज को काफी कोसा जा रहा था। साथ-साथ उस समय इसाई मिशनरियां सांप्रदायिकतावश हिन्दू समाज एवं उसकी रीति-नीति के कटु आलोचक थीं। इन सबसे क्षुब्ध होकर स्वामी जी ने बारम्बार हिन्दू शब्द एवं हिन्दू समाज की कुछ रीति-नीति की प्रशंसा की है। अन्यथा स्वामी जी का दिल संकुचित हिन्दू-मुसलिम-इसाई आदि शब्दों से ऊपर था। तभी स्वामी जी कह सके थे “मुझे जो कुछ कहना है मैं उसे अपने ही भावों में कहूंगा। मैं अपने वाक्यों को न तो हिन्दू ढांचे में ढालूंगा, न इसाई ढांचे में और न किसी दूसरे ढांचे में ही।”¹ स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—‘नहीं, समझौता नहीं, लीपापोती नहीं, सड़े-गले मुर्दों को फूलों से न ढको।...अति निंदनीय कापुरुषता से ही समझौता करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। साहस का आलंबन करो मेरे प्यारे पुत्रो! सबसे बढ़कर तुम साहसी बनो। किसी भी कारण से असत्य के साथ समझौता करने न जाना। चरम सत्य का प्रचार करो। इससे मत डरो कि तुम्हें लोक-समाज की श्रद्धा

1. विवेकानन्द चरित, पृष्ठ 240।

प्राप्त न होगी अथवा तुमसे अवांछनीय झगड़े का कारण उत्पन्न होगा।¹

“शंकर (आदि शंकराचार्य) की बुद्धि क्षुरधार के समान थी। वे विचारक थे और पण्डित भी; परन्तु उनमें गहरी उदारता नहीं थी और ऐसा अनुमान होता है कि उनका हृदय भी उसी प्रकार था। इसके अतिरिक्त उनमें ब्राह्मणत्व का अभिमान बहुत था। एक दक्षिण पुरोहित जैसे ब्राह्मण थे, और क्या? अपने वेदान्त भाष्य में कैसी बहादुरी से समर्थन किया है कि ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य जातियों को ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता! उनके विचार की क्या प्रशंसा करूं। विदुर का उल्लेख कर उन्होंने कहा है कि पूर्व जन्म में ब्राह्मण का शरीर होने के कारण वह (विदुर) ब्रह्मज्ञ हुए थे। अच्छा, यदि आजकल किसी शूद्र को ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो तो क्या शंकर के मतानुसार कहना होगा कि वह पूर्वजन्म में ब्राह्मण था? क्यों, ब्राह्मणत्व को लेकर ऐसी खींचातानी करने का क्या प्रयोजन है?...भाष्य में ऐसे अद्भुत पांडित्य प्रदर्शित करने का कोई प्रयोजन न था। फिर उनका हृदय देखो, शास्त्रार्थ में पराजित कर कितने बौद्ध श्रमणों को आग में झोंककर मार डाला! इन बौद्ध लोगों की भी कैसी बुद्धि थी कि तर्क में हारकर आग में जल मरे। शंकराचार्य के कार्य संकीर्ण दीवानेपन से निकले हुए पागलपन के अतिरिक्त और क्या हो सकते हैं? दूसरी ओर बुद्धदेव के हृदय का विचार करो। बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का तो कहना क्या, वे बकरी के बच्चे की जीवन-रक्षा के लिए अपना जीवन भी देने को सदा प्रस्तुत रहते थे। कैसा उदार भाव!—एक बार सोचो तो।”²

“स्मृति और पुराण सीमित बुद्धि वाले व्यक्तियों की रचनाएं हैं और भ्रम, त्रुटि, प्रमाद, भेद तथा द्वेषभाव से परिपूर्ण हैं।”³

“राम, कृष्ण, बुद्ध, चैतन्य, नानक, कबीर आदि सच्चे अवतार हैं; क्योंकि उनके हृदय आकाश के समान विशाल थे।....रामानुज, शंकर इत्यादि संकीर्ण हृदयवाले, केवल पण्डित मालूम होते हैं....पुरोहितों की लिखी हुई पुस्तकों में ही जाति जैसे पागल विचार पाये जाते हैं।”⁴

स्वामीजी में देशप्रेम था। वे कहते हैं—“जब तक मेरी जन्मभूमि का एक कुत्ता भी भूखा रहेगा तब तक उसे आहार देना ही मेरा धर्म है। इसके अतिरिक्त और जो कुछ भी है—अधर्म है।”⁵

1. वही, पृष्ठ 443।
2. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड 6, पृष्ठ 82।
3. वही, पृष्ठ 326।
4. वही, पृष्ठ 326-27।
5. विवेकानन्द चरित, पृष्ठ 441।

स्वामी जी साधुता, वैराग्य तथा ब्रह्मचर्य पर काफी बल देते थे। कुछ उदाहरण देखें—

“क्या विवाह कर लेने पर धर्म का आचरण या अन्य कोई महान कार्य नहीं किया जा सकता? क्यों नहीं—मोक्ष पर केवल संन्यासियों का अधिकार नहीं है। परन्तु जनक ऋषि ने गृही होकर भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया था, यह उदाहरण देकर जो लोग जनक ऋषि बनने की चेष्टा करते हैं, उनमें से अधिकांश अभागे बच्चों के जनक मात्र हैं—ऋषि जनक नहीं। कहते हैं घर में रहकर धर्म का आचरण करना, योग व भोग दोनों को ही रखते हुए मोक्ष प्राप्त करना ही विशेष बहादुरी है। परन्तु साथ-ही-साथ अनेक व्यक्ति यह भूल जाते हैं कि बहादुरी कर दिखाना ही जीवन का उद्देश्य नहीं है। और यह भी ठीक है कि यदि सभी व्यक्ति बहादुरी दिखाने में व्यस्त रहें तो फिर मानव-जीवन के उच्चतम सभी व्रत निःसंदेह लुप्त हो जायेंगे।

“हम लोग तो मूर्खों का एक दल जैसे हैं—स्वार्थपर, कापुरुष। बस सिर्फ जबान से स्वदेश के कल्याण की कुछ व्यर्थ की बातें रट रहे हैं और अपने महा धार्मिकपन के अभिमान में हम फूले नहीं समाते। मद्रासी लोग दूसरों की तुलना में अधिक तेज हैं तथा दृढ़ता के साथ वे किसी काम पर डंटे भी रह सकते हैं, परन्तु सभी अभागे विवाहित हैं। विवाह! विवाह!! विवाह!!! मानो पाखंडियों ने उस एक ही कर्मेन्द्रिय को लेकर जन्म ग्रहण किया है—योनिकीट—इधर फिर अपने को धार्मिक व सनातन धर्मावलंबी कहते हैं। अनासक्त गृहस्थ होना बहुत अच्छी बात है, परन्तु इस समय उसकी इतनी आवश्यकता नहीं है। अब चाहिए अविवाहित जीवन।”¹

सन् 1900 ई० में न्यायमूर्ति श्री रानडे ने लाहौर की एक सामाजिक सभा में अपना निबन्ध पढ़ा था। उसमें संन्यास-विरोधी बातें थीं। श्री रानडे संन्यास-विरोधी बातें किया करते थे। इसके प्रतिवाद में स्वामी विवेकानन्द ने एक लम्बा निबन्ध लिखा था।

श्री रानडे ने लिखा था कि प्राचीनयुग में जातिप्रथा नहीं थी और ऋषिगण विवाहित होते थे। इसके प्रमाण में उन्होंने क्षत्रियों की कुमारियों के साथ ऋषियों के विवाह की एक लम्बी सूची दी थी। रानडे का मतलब था कि पहले अविवाहित धर्माचार्य नहीं होते थे, तो अब भी नहीं होना चाहिए। स्वामीजी ने इसका जोरदार प्रतिवाद किया था। केवल एक अनुच्छेद लें—

“एक ओर विवाहित गृहस्थ ऋषि कुछ अर्थविहीन अद्भुत, केवल यही नहीं, भयानक अनुष्ठानों के लिए बैठे हैं—कम-से-कम इतना तो कहना ही

1. विवेकानन्द चरित, पृष्ठ 300-01

होगा कि उनका नीतिज्ञान भी जरा मैला-सा है और दूसरी ओर हैं अविवाहित ब्रह्मचर्यपरायण संन्यासी ऋषिगण, जो मानवोचित अभिज्ञा की कमी होते हुए भी इस प्रकार उच्च धर्म, नीति तथा आध्यात्मिकता का प्रस्त्रवण खोल गये हैं जिसके अमृतवारि को संन्यास के विशेष पक्षपाती जैनों तथा बौद्धों ने और उसके बाद शंकर, रामानुज, कबीर, चैतन्य तक ने आकण्ठ पान करके अद्भुत आध्यात्मिक तथा सामाजिक संस्कारों को चलाने की शक्ति प्राप्त की थी, और जो पाश्चात्य देशों में जाकर वहां से कई रूपांतरित होकर हमारे समाज-संस्कारों को संन्यासियों की समालोचना करने की शक्ति तक दे रहा है।”¹

स्वामी जी का हृदय बड़ा भावुक था। वे बात करते-करते उग्र हो जाते और आंसू भी बहाने लगते थे। वे दया के सागर थे। उन्होंने स्वयं लिखा है— “मैं नारी अधिक हूं, पुरुष कम...मैं सदा दूसरे के दुख को अपने ऊपर ओढ़ता रहता हूं—बिना किसी प्रयोजन के, किसी का कोई लाभ पहुंचाने में समर्थ हुए बिना—ठीक उन स्त्रियों की तरह जो सन्तान के न होने पर अपने सम्पूर्ण स्नेह को किसी बिल्ली पर केन्द्रित कर देती हैं।”²

स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है—पहले समय में जो ईश्वर को नहीं मानता था, वह नास्तिक कहलाता था, और आज जो अपने आप को, अर्थात् अपने आत्मा को नहीं मानता है, वह नास्तिक कहलाता है।

स्वामी जी कभी अपने शिष्यों को कहते “प्यारे बच्चो! पूरे भारत पर टूट पड़ो; अर्थात् धर्मप्रचार और जनसेवा के लिए फैल जाओ।” और जब वे अनेक अड़चनों से उद्विग्न होते तब कहते—“कुछ नहीं, अब मैं हिमालय जाना चाहता हूं। छोड़ो प्रपंच।” परन्तु वे पुनः शिष्यों को प्रचार तथा सेवा के लिए ललकारने लगते थे। वस्तुतः स्वामी जी का हृदय गंगा की लहर की तरह निर्मल और तरंगायित था जनसेवा तथा धर्मप्रचार के लिए! ऐसे हृदय के लोग ही कुछ कर सकते हैं। पत्थर का आदमी क्या कर सकता है!

स्वामी विवेकानन्द ने भारत को श्री रामकृष्ण मिशन नाम की एक बलवान साधु संस्था दी, जिसके साधु एवं ब्रह्मचारी त्यागी, सेवापरायण, विद्वान तथा कर्मठ होते हैं। वे साधु-संन्यासियों की व्यर्थ संख्या नहीं बढ़ाते, किन्तु सच्चरित्र और कर्मठ साधु गढ़ते हैं और धर्मोपदेश, सत्साहित्य, चिकित्सा, शिक्षा आदि से जनता की सेवा करते हैं। भारत के अन्य साधु मण्डल भी उनसे प्रेरणा लें तो भारत का बड़ा कल्याण हो।

1. वही, पृष्ठ 494।

2. विवेकानन्द-साहित्य-6, पृष्ठ 359।